द्वितीय अध्याय

जगदीशचंद्र माथुर के नाटकों का परिचय

द्वितीय अध्याय
"'जगदीशचंद्र माथुर के नाटकों का परिचय''

प्रास्ताविक -

दूसरे अध्याय में जगदीशचंद्र माथुर के प्रमुख नाटकों का सामान्य परिचय मैंने दिया है। उनके प्रमुख तीन नाटक हैं- 'कोणार्क', 'शारदीया' और 'पहला राजा'। अपने पहला नाटक 'कोणार्क' में उन्होंने हिंदी नाटक को एक नई दिशा दी और 'पहला राजा' में वे एक नया प्रयोग करने में समर्थ हुए। हिंदी नाट्य साहित्य के विकास क्रम में 'कोणार्क' की एक सुनिश्चित भूमिका रही है। ऐतिहासिक क्रम से भारतेंदु और प्रसाद की नाट्य कृतियों के बाद 'कोणार्क' ही ऐसा प्रयोग है जो पुरातनता और नूतनता का कथ्य और दोनों की दृष्टि से समुचित आकलन करता है। ऐसे ही समय पर 'कोणार्क' की रचना हुई जब हिंदी नाटक की अपूर्णता का बोध नए प्रयोगों के लिए आमंत्रण दे रहा था। 'कोणार्क' की कथावस्तु ऐतिहासिक है। इतिहास उनके लिए माध्यम मात्र रहा है- विचारों का वाहक।

'पहला राजा' मिथक पर आधारित नाटक है। राजा पृथु की पौराणिक गाथा आदिम समाज-व्यवस्था से संबद्ध है जब कोई राजा न था।

'शारदीया' भी 'कोणार्क' की भाँति इतिहास पर आधारित नाटक है। माथुर जी ने इतिहास को सिर्फ विषयवस्तु बनाया लेकिन नाटक का केंद्रबिंदु अपनी अनुभूति और स्वच्छंदतावादी कल्पना है। 'शारदीया' नाटक का लक्ष्य भी इतिहास नहीं है, ऐतिहासिक तथ्य द्वारा जागृत कल्पना ही है।

1) कोणार्क -

'कोणार्क' तीन अंकों का नाटक है। नाट्यशिल्प के दृष्टि से भी यह उत्कृष्ट कलाकृति है। प्रस्तुत नाटक में लेखक ने अपनी कल्पना शक्ति के उपयोग से कलाकार के युग-युग से मौन पौरुष को वाणी देने का प्रयास किया है। कलाकार अपने सौंदर्य सृजन के सम्मोहन में अपने को भूल जाता है।

उड़ीसा के कोणार्क मंदिर आज खंड़ित एवं भग्नावस्था में प्राप्त होते हैं। आज भी स्थापत्य कला की दृष्टि से वह एक नवीन आलोक है। इसकी कलात्मक सर्जन में अजंता, एलौरा, एलिफैंटा और खजुराहो की कला का-सा उच्च कोटि का साहित्यिक एवं वास्तुशिल्पीय दृष्टिकोण दिखाई देता है। उड़ीसा की स्थापत्य कला कलात्मक एवं भावात्मक दोनों ही दृष्टियों में उत्तम है। फिर भी परंपरा यह मंदिर उपेक्षित है। माथुरजी ने इस महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक कला के ध्वंसावशेषों में निहित अपूर्व कलात्मक सर्जना के आधार पर एक काल्पनिक कथानक गढ़ा है तथा इसे समुचित ऐतिहासिक परिवेश प्रधान कर इतिहासानुमोदित रूप प्रदान करने की चेष्टा भी उन्होने की है। चूँकि उड़ीसा का तत्कालीन इतिहास बहुत स्पष्ट नहीं और जो स्पष्ट है उससे वर्तमान कथावस्तु में बहुत कुछ भिन्नता भी है। इतिहास पूर्णतः स्पष्टीकरण न होने के कारण यह एक इतिहासाश्रित कृति ही कही जा सकती है। यह रचना स्त्री पात्रों से विहीन है।

'कोणार्क' की कथा में मंदिर के शिल्पी समुदाय को प्रमुख स्थान दिया है। पहला दृश्य शिल्पी विशु के कक्ष का है। विशु अपने कक्ष में चिंतापरक मुद्रा में बैठा है। मंदिर के नाट्याचार्य की मूर्ति उकेर रहे हैं। अपनी संचित स्मृति के आधार वह कंकण पर काम की मनोहर छवि उकेर देता है।

उत्कल नरेश नरसिंहदेव की इच्छा से प्रधान शिल्पी विशू एक के बाद चार विशाल मंदिरों का निर्माण भुवनेश्वर में कर चुके थे। अब पुरी से सत्रह मील दूर सागर तट पर विशाल सूर्य मंदिर के निर्माण में लगे हैं। बारह वर्षों से बारह सौ शिल्पी काम में लगे हैं। मंदिर पूरा हो चुका है, केवल शिखर पर कलश रखना बाकी है। तब विशू के सामने यह समस्या आती है कि कलश शिखर पर टिक नहीं पाता है। उत्कल नरेश नरसिंहदेव बंगाल में यवनों को पराजित करने में लगे हैं। इधर उनका महामात्य उनकी अनुपस्थिति में न केवल मनमानी करता जा रहा है बल्कि शिल्पियों के प्रति उसने एक विचित्र प्रतिशोधात्मक नीति अपनाई है। उसने यह घोषित कर दिया है कि अगर एक सप्ताह के अंदर कलश स्थापित नहीं हुआ तो सभी शिल्पियों के हाथ काट दिए जाएँगे। ठीक उसी दिन देवालय-निर्माण-कार्य में विशु का सहायक राजीव एक सोलह साल का युवक शिल्पी धर्मपद को विशु से मिलाता है। प्राकृतिक आकर्षण से उनमें एक-दूसरे के प्रति

खीचाव निर्माण होता है। उसी दिन राजीव विशु को यह भी जानकारी देता है कि राजनगरी के ज्योतिषी ने यह भविष्यवाणी की है कि ज्योंहि मंदिर का निर्माण कार्य पूरा होगा इसके पत्थरों में पंख लग जाएँगे और सारा मंदिर आकाश में उड़ जाएगा।

विशु को सत्रह साल पूर्व के अपने प्रेम की घटना याद आ जाती है। अपने गाँव के हाट को आनेवाली सारिका नाम की युवती से विशु प्रेम करता है। लेकिन वह एक बच्चे की माँ बननेवाली है यह बात सुनकर वह कुल और परिवार के भय से उसे छोड़कर भुवनेश्वर में आता है। कायरतापूर्वक अपनी भाग आने की बात को सोचकर वह विचलित हो जाते हैं। यह सोचकर वह दुःखी है कि उसका बच्चा न जाने कहाँ होगा, कैसा होगा, न जाने सारिका का क्या हुआ होगा। सारिका और सारिका पुत्र को मिलने की तीव्र कामना जिस दिन उसके मन में आयी उस दिन धर्मपद का मिलन हुआ।

महाराज नरसिंहदेव की अनुपस्थिति में राजराज चालुक्य राज्य की प्रजा पर अत्याचार करता है। महाशिल्पी को पता है ि महाराज नरसिंहदेव बंग प्रदेश में यवनों को पराजित करने में लगे हैं। राजनगरी में महामात्य का अत्याचार सर्वोपरी हो रहे हैं। सौम्यश्री तथा राजीव उसे इस बात से अवगत कराते हैं कि आम जनता तो महामात्य राजराज चालुक्य के अत्याचारों से त्रस्त है। उसके साथ ही दूर-दूर से आनेवाले शिल्पी उनके अत्याचारों से पीड़ित हैं। यह अत्याचारी महामात्य और भी सशक्त होता जा रहा है। महादंड़ पाशिक के सब अधिकार भी उसने हथिया लिये हैं। दंड़पाशिक सैनिकों के बल पर महामात्य की शक्ति दिन-प्रति-दिन बढ़ती ही जा रही है। लेकिन विशु के विचार में राजनीति से कलाकार का कोई संबंध नहीं। उसका काम सिर्फ शिल्प निर्माण है।

राजराज चालुक्य का क्रोध इसलिए नहीं कि मंदिर के कलश की स्थापना शीघ्र नहीं हो पा रही है या वह मंदिर को जल्द पूरा देखना चाहता है, बल्कि वह शिल्पियों को क्षुद्र-जीवन समझता है। उसे आतंकित कर एक ओर वह मुक्त में उनसे काम कराना चाहता है। दूसरी ओर राजा द्वारा दिया गया धन तथा शिल्पियों की जमीन हड़पना चाहता है। वह जानता है कि स्वप्नहीन, अतीतजीवी, कल्पना में रममान न तो विद्रोह कर सकते हैं और न प्रतिकार। महाराज

नरसिंह देव के प्रति भी वह भयभीत नहीं है। वह जानता है कि वे परम पराक्रमी, यवनावनि वल्लभ होने के बावजूद कोणार्क कला दृष्टि के अभिभावक है। यथार्थ की अपेक्षा सौंदर्य में रममान होनेवाले नरसिंहदेव महामात्य दूवारा किए जा रहे अत्याचारों को देख नहीं पाते।

सारे राज्य में अकाल पड़ता है। चालुक्य शिल्पियों के सामने आकर कहता है कि आज से एक सप्ताह के अंतर मंदिर का निर्माण पूरा नहीं हुआ तो शिल्पियों के हाथ काट दिए जाएँगे। चालुक्य की धमकी से सब भयभीत हो जाते हैं। कलश स्थापन में चिंतित विशू के सामने एक नया शिल्पि धर्मपद यह आश्वासन देता है कि वह कलश प्रतिष्ठित कर देगा। लेकिन बदले में पुरस्कार स्वरूप एक दिन के लिए प्रधान शिल्पी पद उसको देना चाहिए, जिस दिन मंदिर का अभिषेक महाराज के समक्ष होगा। चालुक्य की धमकी से सब लोग भयभीत हो जाते हैं। लेकिन धर्मपद चालुक्य की धमकी को एक चुनौती के रूप में स्वीकार करता है। उसकी दृढ़ता और उत्साह से भय दूर हो जाता है।

प्रथम अंक में दो महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ संवादों के दूवारा स्पष्ट होती हैं। पहली सूचना है ज्योतिषी की भविष्यवाणी। दूसरी सूचना महाशिल्पी स्वयं देते हैं कि मंदिर की मूर्ति निराधार इसलिए लटकी है कि चारों तरफ चुंबक का बराबर आकर्षण है। जैसे ही ठीक बीचवाला चुंबक हटाया, मूर्ति के साथ-साथ मंदिर की शिलाएँ और स्तंभ वैसे ही गिर पड़ेंगे जैसे भूकंप आया हो।

दूसरे अंक का आरंभ मंदिर में व्याप्त हर्ष और उत्साह के वातावरण में होता है। कलश स्थापित हो चुका है। कलश स्थापन के दिन अपनी सेना को बंगाल में छोड़कर नरसिंहदेव आनंदित होकर आए हैं। प्रसन्न होकर वह महाशिल्पी विशु को सम्मानित करना चाहता है- ''महाशिल्पी विशु, आगे बढ़ो और यह रत्नमाला हमारे हाथों से अपने-''[1]

उस समय विशु क्षमायाचना करता है कि इस सारा सम्मान का अधिकारी धर्मपद है यह बताता हुआ अपने वचन बताते हैं। नरसिंहदेव धर्मपद को उचित सम्मान और आधार करना चाहता है। मंदिर कलश स्थापना का समाचार पाते ही सारी सेना का बंग प्रदेश में ही छोड़कर नरसिंहदेव राजधानी लौट आए हैं। वे कहते भी हैं- ''कोणार्क की सम्मोहन व्याघ्र की बंशी था

और हम थे विवश मृग।"[2] महाराज के समक्ष धर्मपद चालुक्य द्वारा प्रजा पर और शिल्पियों पर किए जानेवाला अत्याचार सुनाता है। शिल्पियों के हाथ काटने की धमकी, शिल्पियों कारीगरों को दिए जानेवाले मुद्राओं के पुरस्कारों को बंद करना तथा शिल्पियों को दी गई जमीन छीन कर शिल्पियों को निराश्रित बनाना आदि सबकुछ सुनने के बाद भी कोणार्क-कला से सम्मोहित नरसिंहदेव स्थिति की गंभीरता नहीं समझ पाते। वे कहते हैं- "जान पड़ता है वंग देश में हमारी लंबी अनुपस्थिति के दिनों में राजराज चालुक्य बिना सोचे समझे शिल्पियों से विरक्त हो गए। हम उनका भ्रम दूर करेंगे।"[3] धर्मपद उन्हें समझाने का प्रयास करता है कि महामात्य के अत्याचारों के शिकार केवल शिल्पी ही नहीं बल्कि संपूर्ण जनता भी है। वह कहता है- "ग्रामों में रहनेवाले सैकड़ों-हजारों किसान, वन और अटीविका के शवर और वे अगणित मजदूर, जिनके ढोए हुए पाषाणों को हम शिल्पी रूप देते हैं, देव वे सभी आज त्राहि-त्राहि कर रहे हैं। यदि वे बोल पाते तो.... महाराज से केवल एक वरदान माँगते- महामात्य का पद किसी प्रजावत्सल महानुभाव को दिया जाए।"[4] नरसिंहदेव इस यथार्थ को स्वीकार नहीं करते। क्योंकि कला और कलाकार के प्रति उनका दृष्टिकोण भी विशु जैसा ही है। राजनीति की बातें वे कलाकार के परिधि के बाहर की मानते हैं। नरसिंहदेव की इसी दृष्टिकोण का लाभ उठाकर अत्याचारी महामात्य जहाँ एक ओर जनता में आतंक फैलाकर उसका शोषण करता है तो दूसरी ओर नरसिंह देव के यथार्थ विमुख प्रवृत्ति का लाभ उठाकर एक भारी षड़यंत्र द्वारा संपूर्ण राजसत्ता प्राप्त करने का प्रयास करता है।

धर्मपद द्वारा महाराज यह सारी बातें सुनकर मर्माहत हो जाते हैं और शिल्पियों का वेतन तथा उनके पुरस्कार अविलंब बांट दिए जाने का आदेश देते हैं और सैनिकों द्वारा हथिया गई उनकी जमीन आज़ाद कर देने का भी हुक्म देते हैं।

शिल्पियों पर किए गए अत्याचार और कष्ट की बात महाराज को बताने से महाशिल्पी और अन्य लोग इसलिए भयभीत थे कि चालुक्य सारे ओदश महाराज के नाम पे कर रहा था। इसलिए सब लोागें ने यह समझ रखा था कि सब अत्याचार महाराज की सहमति से कर रहा है। लेकिन तुरंत पता चलता है कि चालुक्य की महत्वाकांक्षा का कोई अंत नहीं था। उसने महाराज के साथ कुटनीति अपनाई थी।

कोणार्क की ओर आते वक्त महामात्य अपनी दंड़पाशिक सेना के साथ-साथ था। लेकिन मंदिर से तीन कोस दूरी पर उसके रथ की धूरी टूट गई इसलिए वह अपनी सेना के साथ वहाँ ही रूका और महाराज नरसिंहदेव 'अधीर बालक की भाँति' कोणार्क पहुँचा। असल में यह महामात्य का षड़यंत्र था। समूची जनता और नरसिंहदेव 'कोणार्क' के कला-स्वप्न में मशगुल रहे और राजराज चालुक्य ने इस बीच दंड़पाशिकों तथा मांड़लिकों को अपना बनाए। सेना विहीन महाराज को रथ की धूरी के टूटने के बहाने कोणार्क में भेज दिया गया और इसी बीच राजधानी में राजप्रसाद पर उसने अपना अधिकार कर लिया। पूरी तैयारी होने के बाद अपने आपको उत्कल नरेश घोषित कर अपने दूत द्वारा नरसिंहदेव को 'आत्म-समर्पण' करने का संदेश भेजकर पूरे मंदिर को दंड़पाशिक सेना से घेर लेता है। अब कोणार्क नरसिंहदेव के लिए सचमुच व्याध की बंशी बन जाता है।

मंदिर में उक्त बातचीत के प्रसंग में लिप्त सभी व्यक्ति आश्चर्यचकित हो जाते हैं। सब को समझ में आते हैं कि नरसिंहदेव निर्दोषी है सब के पीछे चालुक्य का षड़यंत्र है। महाराज नरसिंहदेव ने भी स्थिति की भयंकरता को समझकर प्रतिशोध लेने की तैयारियाँ शुरू की। इस समय धर्मपद ने दिया उत्तर उसकी स्वामी भक्ति और राष्ट्रप्रेम को उजागर करता है- "तो सुनो शैवालिक ! अपने नए स्वामी के पास यह अंगारों भरा संदेश ले जाओ कि कलिंग नरेश श्री नरसिंहदेव महाराज अत्याचारी विश्वासघातियों की धमकियों की चिंता नहीं करते। वे आज अकेले नहीं हैं, आज उनके पीछे वह शक्ति है जिससे धरती थर्रा उठेगी, दीन, निर्धन प्रजा की शक्ति जो कोणार्क के शिल्पियों और मजदूरों में दुर्दम्य सेनाओं का बल भर देगी। कोणार्क का मंदिर आज दुर्ग का काम देगा। जाओ हमें चुनौती स्वीकार है।"[5] धर्मपद की इस बात से मंदिर में कार्यरत श्रमिकों और शिल्पियों का उत्साह और बढ़ गया था और चालुक्य की दृष्टता अब सर्वाविदित हो चुकी थी। मंदिर के प्राचीर के अंतर्गत सभी शिल्पी उस क्षण एकत्र थे जब चालुक्य के विद्रोह और मंदिर के घेरे जाने की खबर आयी। नरसिंहदेव वीरतापूर्वक लड़कर मरना श्रेयसकर समझता है, आत्मसमर्पण नहीं। प्रजा की ताक़त उनके साथ थी। बारह सौ शिल्पी और पाँच हजार मजदूर धर्मपद के सेनापतित्व में राज्य की रक्षा के लिए मरने को तैयार थे। शिल्पियों की प्रतिशोध जाग

उठी थी। रणनीति तय हुई थी। तय हुआ की रात्री के प्रथम प्रहर तक चालुक्य के आक्रमण को रोके रखना है। दूसरे प्रहर में समुद्र की ओर से महाराज पुरी की ओर निकल जाएँगे और पौर सभा की मदद से सैन्य संग्रह करके चालुक्य पर आक्रमण करेंगे। महाराज धर्मपद को उस दिन के युद्ध का सेनापति और कोणार्क मंदिर का दुर्गपति नियुक्त किया। इस प्रकार कोणार्क एक दुर्ग बन गया और शिल्पीगण सैनिक बन गये। धर्मपद के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर ही नरसिंहदेव ने उसको दुर्गपति बना दिया था। दिनभर चालुक्य को रोकना शिल्पियों के लिए कठिन काम था। साथ ही विशु के सामने यह सवाल उठता है कि यह धर्मपद कौन है ?

तृतीय अंक उसी दिन मध्यरात्री का है। धर्मपद के शिल्पी सैनिकों ने चालुक्य को रोका और संध्या हो चुकी है। युद्ध विराम का समय है, पहला प्रहर बीत चुका है। राजा नरसिंहदेव रात के अंधेरे में एक नौका पर सवार होकर सुरक्षित पुरी की ओर प्रस्थान कर चुके हैं। चालुक्य की सेना दिनभर लड़ती रहती है। लेकिन उनको एक बड़ी शक्तिशाली सेना का सामना करना पड़ता है। ऐसे प्रतिशोध की तो चालुक्य ने कल्पना भी नहीं की थी। धर्मपद ने उसे कोणार्क पर कब्जा करने नहीं दिया और न नरसिंहदेव को बंदी बनाने।

रात्रिकालीन युद्धविराम के अंतराल में तीसरे अंक की घटनाओं के नाटकीय मोड़ सामने आते हैं। छल और छद्म के बल से चालुक्य मंदिर की एक प्राचीर में छिद्र बनाकर चुपके से अंदर आते हैं। युद्ध करते हुए धर्मपद घायल हो जाते हैं और अधिक रक्तस्राव से मूर्च्छित हो जाते हैं। इसी वक्त उसी की सेवा करते हुए सौम्यश्रीदत्त उसके गले के हार में कामदेव की मूर्ति देखता है। ठीक वैसी ही विशु ने सौम्यश्रीदत्त की प्रतिमा के गले के हार में अंकित की थी। सौम्य श्रीदत्त तुरंत पहचानते हैं कि धर्मपद विशु का पुत्र है और कामदेव की वही मूति है जो स्मारक के रूप में युवा शिल्पी विशु ने कभी अपनी प्रेयसी को दी थी। सौम्यश्री वही लेकर विशु के पास आते हैं और इस शुभसमाचार से उसे अवगत कराते हैं। विशु धर्मपद से उसकी जीवन कथा सुनकर तथ्य की पुष्टि करते हैं। सत्रह वर्षों से बिछुड़े पिता-पुत्र गले मिलते हैं। हताश हो गए विशु को पुत्र से मिलने के बाद जीने का नया उत्साह मिल जाता है। विशु के लिए अब चिंता की कोई बात भी नहीं थी। इस वक्त सूचना मिलती है कि रात के अंधेरे का लाभ उठाकर दक्षिण प्राचीर के अंश में शत्रु

BARODA UNIVERSITY LIBRARY (stamp, mirrored)

दल एक छोटा-सा रास्ता बनाकर मंदिर के अंदर पहुँच गया है। धर्मपद सुरक्षात्मक व्यवस्था हेतु जाना चाहता है। थके और घायल सैनिक शिल्पी चालुक्य की प्रशिक्षित सेना के सामने टिक नहीं पाएँगे, यह धर्मपद समझ चुका था। सुबह होने तक मंदिर पर चालुक्य का अधिकार हो जाएगा।

विशु को मालुम था कि नरसिंहदेव के सहायता सेना आने के पहले कोणार्क मंदिर पापियों के हाथ में चला जाएगा। यह शिल्पियों की हार होगी, कला की पराजय। विशु धर्मपद को पिता सहज स्नेहवश एक बार रोकना चाहता है। लेकिन धर्मपद द्वारा कलाकार की, कोणार्क की, मंदिर कला की और स्वयं विशु की बारह वर्ष बारह वर्ष की साधना की पराजय की बात सुनकर उसका शिल्पी मन जाग उठता है। वह निर्णय लेता है कि प्रतिशोध करना ही चाहिए। अपनी पवित्र कला साधना को अत्याचारी, अपवित्र हाथों में नहीं जाने देंगे। अपने पुत्र की जान खतरे में क्यों न हो फिर भी वह कोणार्क को पराजय का प्रतीक नहीं बनाना चाहता है। कोणार्क शिल्पियों का प्रतिशोध का प्रतीक बनाना चाहता है। ''कोणार्क शिल्पी की पराजय का प्रतीक नहीं रहेगा।''[6]

''प्रतिशोध.... मेरे देवता.... मेरे दिवाकर शिल्पी का प्रतिशोध।''[7]

धर्मपद की मृत्यु होने से क्रोधित विशु मंदिर के चुंबक को तोड़ने लगते हैं। उस चुंबक पर मंदिर का आकर्षण था वह केंद्रबिंदु था। तब तक सारे शिल्पियों को पराजित करके चालुक्य नरसिंहदेव और विशु को ढूँढ़ते हुए आ पहुँचते हैं। चालुक्य विशु को पत्थर तोड़ने से रोकते हैं। लेकिन विशु के परिश्रम से पत्थर टूट जाते हैं। पूरा मंदिर विस्फोट के साथ गिर पड़ता है। मंदिर खंड़हर हो जाता है। कोणार्क मंदिर के वे अवशेष महाप्रतापी नरसिंहदेव की कलाप्रियता और महाशिल्पी विशु की कला की चरमोत्कृष्टता एवं अत्याचारियों की विनाश की कथा कह रहे हैं। इस के साथ कोणार्क नाटक की कथावस्तु भी समाप्त हो जाती है।

इस में उस जनशक्ति को उभारा गया है, जिसके सहारे राज्य बनते एवं बिगड़ते हैं। सम्राटों के क्रूर आचरणों से पिसती हुई यह दीन हीन जनता समय पड़ने पर शक्तिशाली एवं प्रशिक्षित सेना को रोकने की भी क्षमता रखती है। राजा की शक्ति सामंतों और श्रेष्ठियों पर नहीं इसी जनशक्ति पर अवलंबित है।

2. *पहला राजा* –

प्रस्तुत नाटक पौराणिक संदर्भ में आधुनिक युगबोध का एक मार्मिक चित्र उपस्थित करता है। भूमिका भाग के पूर्व कथन ''हिमालय का पुत्र जो प्रकृति की निश्चल क्रोड़ में खो जाना चाहता है, आर्य युवक जो पुरुषार्थ और शौर्य का पुंज है, निषाद, किन्नर एवं अन्य आर्येतर जातियों का बंधु जो एक समीकृत संस्कृति का स्वप्न देखता है, दारिद्रय का शत्रु और निर्माण का नियोजक जिसे चक्रवर्ती और अवतार बनने के लिए मजबूर किया जाता है। .....मैं और संकेत नहीं दूँगा कि वह कौन है।''[8] उन्होंने इसमें नेहरू के कार्य को प्रतीक के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। राजा नामकरण की सार्थकता और उसके उत्तरदायित्व पर भी प्रकाश डाला है। नाटककार ने अपने एक लेख में इसका संकेत दिया है, ''मैं ने पृथु के रूप में नेहरू की तेजस्विता और व्यथा को अभिव्यक्त करने की चेष्टा की है।''[9]

नाटककार प्रस्तुत नाटक को आधुनिक अन्योक्ति का मंजीय रूप मानता है। ''यह नाटक न पौराणिक है, न ऐतिहासिक, न यथार्थवादी। यह तो एक 'माडर्न एलिगरी' (आधुनिक अन्योक्ति) का मंजीय रूप है।''[10] इस नाटक में नाटककार ने उस विषय की ओर अधिक ध्यान दिया है, जिस ओर हिंदी नाटकों का ध्यान कम ही गया है। पृथु की कथा का आधार महाभारत का 'राजधर्मानुशासन पर्व', भागवत पुराण का चतुर्थ स्कंध 19 वाँ अध्याय एवं विष्णु पुराण है। कवष नामक निषाद का ऋग्वेद और ऐतरेय ब्राह्मण में उल्लेख है। साथ ही हड़प्पा, मोहनजोदड़ो की खुदाई से भी अपेक्षित सहायता नाटककार ने ली है। इन आधारों के साथ ही कथावस्तु के लिए नाटककार ने कल्पना का भी यथोचित उपयोग किया है।

पहला राजा नाटक के प्रथम अंक में ब्रह्मावर्त के स्थानेश्वर के निकट के टीले पर एक मंजुषा में राजा वेन का शव रखा है। वेन की माँ शव के पास बैठकर उस पर विशेष लेप लगा रही है। मृत्यु के देवताओं से अपने प्रतापी पुत्र वेन की आत्मा लौटाने की विश्वासपूर्वक प्रार्थना करती है।

ब्रह्मावर्त के चौथा या पाँचवे शासक अंग और सुनीथा का पुत्र था वेन। वेन बचपन से ही उद्दंड़ और दुर्विनीत था। उसके व्यवहार से तंग आकर अंग एक रात सब कुछ

छोड़कर चुपचाप वन को चले गए। दस्युओं के डर से अत्रि, गर्ग, शुक्राचार्य, बालखिल्य आदि मुनियों ने सुनीथा की राय से वेन को शासक के रूप में स्वीकार किया। वह बड़ा अत्याचारी था। उसने यज्ञ, हवनादि बंद करवा दिए और अपने को ईश्वर घोषित करने लगा। उसने मुनियों की सलाह को ठुकराया और वर्ण संकरता को बढ़ावा दिया। वेन के अत्याचारों से मुनिगण क्षुब्ध हुआ। अपने मंत्रों, हुंकारों और मंत्रपुत कुशा के प्रहारों से वेन को मुनिगण मार देते हैं।

पिछले अट्ठाईस दिनों से वह अपने पुत्र के लिए प्रार्थना कर रही है। लेकिन वेन का शरीर निर्जीव है। चमत्कारी लेपन से शरीर तो सुरक्षित है। अट्ठाईस दिनों के बाद वेन के जीवित न होने के कारण क्रुद्ध होकर सुनीथा अपनी दासी को आदेश देती है कि वेन के गले की कुशा को तलहटी में ले जाकर रोप दे ताकि ब्रह्मावर्त की धरती पर अभिशापों का जंगल फैल जाय। मुनियों को उनके किए पर फल भोगना चाहिए। जिन्होंने कुशा की उस रस्सी में हत्यारे मंत्र फंके थे।

तलहटी में अत्रि, गर्ग, बालखिल्य और शुक्राचार्य मिलते हैं। उनकी बातचीत से पता चलता है कि वेन अत्याचारी राजा थे। इसलिए मुनियों ने उसको मृत्यु का अभिशाप दे दिया। लेकिन वेन के मृत्यु के बाद उनके भय से छिपे हुए दस्युगण आश्रमों पर हमला करना शुरू करते हैं। ऋषि मुनियों पर भी वह आक्रमण करते हैं। मुनिगण असुरक्षित हो जाते हैं। एक शासक नियुक्त किए बिना राज्य व्यवस्था ठीक नहीं हो सकती। इसलिए मुनिगण राजमाता सुनीथा को मिलने आए हैं। कुशा रोपती हुई दासी को सूत मागध खींचकर मुनियों के पास ले जाते हैं। वे मुनियों को बताते हैं कि आश्रम छोड़ने के बाद दस्युओं ने फिर आक्रमण किया था। उन्हें दो वीर युवकों ने भगाया है। वेन के दुरव्यवहार से दुःखी उनके वन पर चले गए पिता अंग ने उन युवकों को भेजा है। गौर वर्ण पृथु और श्यामांग कवष को देखकर शुक्राचार्य आदि मुनियों के मन में एक योजना जन्म लेती है।

वे पृथु और कवष को स्नानादि करके आने के लिए कहते हैं। सूत मागध के साथ आई गर्ग के परिपालिता पुत्री अर्चना को भी वहीं उपस्थित होने को कहते हैं और सभी मुनिगण अर्चना के पास पहुँचते हैं। वह सुनीथा को वेन का शव देने के लिए विवेश कराता है। ताकि राज्य को उत्तराधिारी मिल जाए। राजा के अभाव में मुनियों को दस्युओं के आक्रमण से अपने आश्रमों

की रक्षा की चिंता हुई। फलतः उन्होंने सुनीथा से समझौता किया और वेन की देह मंथन द्वारा चतुरतापूर्वक वेन को राजा बनाना चाहा।

मुनिगण राजमाता सुनीथा से वेन के शव को माँगकर उसके दाहिनी जंघा और दाहिनी भुजा का मंथन करते हैं। जंघा का मंथन करके कवष को जंघा पुत्र घोषित करते हैं। वह भयंकर मुखौटा युक्त जले हुए खंभों के रंग के समान निषाध है। भुजा का मंथन करके पृथु को भुजापुत्र घोषित करते हैं। पृथु देवराज इंद्र के समान तेजस्वी है। जिसे मुनि धर्म और कर्मनिष्ठ पहला राजा घोषित करते हैं। कवष को वेन का पाप अंश और पृथु को वेन का पुण्य अंश बताता है। पृथु की सहायता के लिए मंत्रिमंडल का निर्माण होता है। जिसमें शुक्राचार्य पुरोहित मंत्रि, गर्ग ज्योतिष मंत्री और अत्रि को अमात्य बनाया जाता है। मुनिगण पृथु को शपथ दी जाती है। हर एक वचन पर कुशा रस्सी को एक गाँठ बाँध दी जाती है। शुक्राचार्य, अत्रि, गर्ग आदि मुनियों द्वारा उसे पाँच वचन लेने पड़ते हैं। पहला वचन शुक्राचार्य द्वारा दिया जाता है- "यह कि आप अपने बाहुबल से ब्रह्मावर्त के आश्रमों और यज्ञशालाओं की रक्षा करेंगे।"[11] महत्वाकांक्षी अधिकारलोलुप मुनिगण पृथु को प्रतिज्ञाओं द्वारा केंद्रस्थ नहीं रहने देना चाहते हैं। उसे कवष तथा उर्वी से मिलकर पूर्ण बनने नहीं चाहते हैं क्योंकि इससे पृथु पर उसका नियंत्रण समाप्त होगा और उसका उपयोग वे आपने स्वार्थ के लिए नहीं कर पाएँगे। अपने स्वार्थ के बशीभूत होकर वे आर्य और दस्युओं का भेद करते हैं। अंत में पृथु की जयजयकार की जाती है। किंतु इसी अवसर पर मित्र कवष और पृथु का विचार विरोध स्पष्ट होता है। इस वक्त पूर्व प्रेमिका उर्वी से पृथु का वियोग होता है और अप्सरा कन्या अर्चना से मिलन होता है।

मुनि अपने आश्रमों की रक्षा और आर्य धर्म के नाम पर पृथु को उलझाए रखते हैं। प्रजा की ओर उसे ध्यान देने नहीं देते। परिणामतः राज्य में दुर्भिक्ष पड़ जाता है और प्रजा उत्तेजित हो जाती है। पृथु के निहत्थे उत्तेजित भीड़ में घुस जाने पर मुनिगण शंकित हो जाते हैं। शुक्राचार्य अनुमान लगाते हैं कि इससे पृथु की शक्ति वेन से बढ़कर हो जाएगी। अपनी कूटनीति से मुनिगण पृथु को भूचंड़िला की ओर मोड़कर उसे प्रजा के असीम स्नेह और लोकप्रियता से विमुख कर देते हैं। अत्रि मुनि के शब्दों में- "धन्य है शुक्राचार्य तुम्हारी शुक्रनीति। ....प्रजा अब हम लोगों की मुट्टी में होगी। भृगुवंशी, मानता हूँ तुम्हारा लोहा।"[12]

सूत और मागध के गुणगान सुनकर पृथु कहता है कि "आपने मुझे राजा बनाना स्वीकार किया, इसके लिए स्तुति नहीं कर्म का उल्लास चाहिए। बिना मेहनत के तारीफ मुझे उतनी ही अशोभनीय लगती है जितनी बिना बुराई के निंदा।"[13] गर्ग पुत्री अर्चना को रानी के रूप में अभिषिक्त किया जाता है। इस प्रकार पृथु को ब्रह्मावर्त का राजा बना देता है।

राजा अंग अपने पुत्र वेन के अत्याचारों से क्षुब्ध होकर वन चले गए थे। वेन का किसी निषाध युवती के साथ संबंध था और पिता पुत्र में संघर्ष होने लगा। वेन वेद विरोधी और अत्याचारी थे और अपने को ईश्वर घोषित किया। इस पर दुःखी होकर वेन हिमालय पर एकांतवास के लिए चले गए। इसके बाद वेन के प्रयेसी गर्भवती हो गई। मुनिगण इसका विरोध किया। वेन ने ही उसको ठुकरा दिया। शुक्राचार्य उसको वन भेजा, उसका पुत्र है कवष। वह कवष पृथु का मित्र बन गया। हिमालय की तलहटी के प्रदेश का आर्य और प्रतिभावान युवक था पृथु। वेन की मृत्यु का समाचार सुनकर अंग ने कवष को सुनीथा के पास भेजा और सुरक्षित पहुँचाने दायित्व पृथु को दिया। अंग के आश्रम में पृथु और कवष की एक मित्र थी उर्वी। उर्वी को दोनों से अथाह प्रेम था। इसलिए वह अर्चना से कहती है- "नेहा भी एक खोज है। मेरे मन का मेघ दो तालों के दर्पनों में झाँकता है।"[14] ब्रह्मावर्त में घटनेवाली घटनाओं की खबर चारों ओर थी। इसलिए अंग ने जब पृथु और कवष को स्थानेश्वर भेजा तो उर्वी भी साथ आयी यह सोचकर कि "ब्रह्मावर्त बहेलियों का जाल है। दो नादान कबूतर उसमें कहीं फँस न जाए।"[15] लेकिन अंग की योजना उलट जाती है। कवष के स्थान पर पृथु राजा बन जाता है। पृथु कवष को साथ रखना चाहता है और ऋषियों को अपना मंत्रिमंडल और कवष को अपना सेनापति बनाना चाहते हैं। लेकिन कवष इस व्यवस्था से सहमत न हो के पृथु का साथ छोड़ देता है।

द्वितीय अंग एक वर्ष बाद का है। राजा पृथु अपने पराक्रम से ब्रह्मावर्त की धरती को डाकुओं से मुक्त कर देता है। कुछ दिनों बाद धरती सूख जाती है, उसके राज्य में दुर्भिक्ष पड़ जाता है। धरती अन्नजलहीन हो जाती है। पृथु को ज्ञात होता है कि धरती जान-बूझकर अन्नजल अपने अंदर छिपा ली है किंतु दासी पुत्र कवष अपने परिश्रम से सरस्वती को पयस्विनी बना लेता है। उर्वी पृथ्वी का प्रतीक है। वह पृथु को धरती सूख जाने की कारण बताती है। पृथु को ज्ञात होता है

कि मनुष्य कर्म और विवेक शून्य हो गया है। इसीलिए धरती अपने में निहित पदार्थों को नहीं देती। उर्वी पृथु से इस संदर्भ में कहती है, "धरती माँ ने कहा होगा मैं गौ हूँ, लेकिन मुझे दुहनेवाला कौन है ? और मेरे योग्य बछड़ा और दोहन पात्र जिसमें मेरे दूध की धाराएँ एकत्र हो ? तुम राजा हो प्रजा के नेता हो तुम्हारा पुरुषार्थ सिर्फ युद्ध और संघर्ष में ही तो नहीं है। मैं वसुंधरा हूँ मुझे दुहकर अभीष्ट वस्तुओं को निकालने में भी तुम्हारा पुरुषार्थ है और तुम्हारी प्रजा का धर्म है। तुम आर्य कुल के पहले राजा हो। हे राजन, कर्म पुरुष बनो।"[16]

पृथु ने दस्युओं को भगाया और चारों तरफ शांति जगाया। पृथु अर्चना के प्रेम पाश में बंध गया है। वह अर्चना को बोलता है- "अर्चि सुनो !.... एक तराजू है मेरा यह तन मन। एक पलड़े पर तुम्हारे आलिंगन का सेना और दूसरे पर चुनौतियों का भार ! ....अगर केवल.... प्यार सम्मोहन में खो जाऊँ तो.... तो तराजू के पलड़े चंचल हो जाते हैं अर्चि...."[17] इसी वक्त चारों ओर अकाल के कारण हाहाकार मचाते हैं। मुनियों के लापरवाही का नारा लगाकर जनता पृथु के समक्ष प्रदर्शन करने आती है। पृथु को बात समझ में नही आती। ऋषियों का मंत्रिमंडल उसे बताता है कि सरस्वती के पार की दस्युओं की गुफा में उर्वी और कवष भूचंड़ी देवी का अनुष्ठान कर रहे हैं। वह अनुष्ठान के प्रभाव से पृथ्वी का रस सूख गया है। पृथु उन दोनों को मारने के लिए निकल जाते हैं। थक जाने के कारण वह बीच में रूकता है और आराम करता है। तब वह एक स्वप्न देखता है- भागती पृथ्वी... पीछा करता पृथु, पृथ्वी का गौ...वन जाना, उर्वी... पृथ्वी, गौ में समान बिंब, गौ द्वारा दोहन का अनुरोध। स्वप्न टूटने के बाद वह इस पर सोचते हैं तब जोर जोर की आवाज उसका ध्यान खींचती है। जब वह आगे बढ़कर देखता है तब उर्वी और कवष अन्य जातियों के लोगों के साथ एक यंत्र का चालन करता है और भूचंड़िका का अनुष्ठान करते हैं। वह क्रुद्ध हो गए क्योंकि अकाल का कारण भूचंड़िका का अनुष्ठान है ऐसा लगा था। कवष और उर्वी मिलकर उसे समझाते हैं कि अकाल का कारण यह पूजा अनुष्ठान नहीं है उसका कारण है आर्यों की कृषि पद्धति। वैश्वानर अग्नि आगे-आगे लेकर चलते हुए जंगल जलाकर बीज बोनेवाली खेती जिसकी उत्पादन क्षमता एक ही बार में चुक जाती है। यह खेती प्रथा से जंगल सूख जाता है। जिसके कारण पृथ्वी बंजर बन जाता है।

पृथु की स्वप्न देखने की घटना से तृतीय अंक शुरू होता है और निकट की ध्वनी सुनकर पृथु वहाँ पहुँचते हैं। जहाँ भूचंडिका की उपासना के साथ यंत्र के सहारे सरस्वती से जल खींचा जा रहा है। पृथु की उर्वी और कवष से भेंट होती है। सभी मिलकर अकाल पर चर्चा करते हैं और आर्यों के कृषि पद्धति पर भी चर्चा करते हैं। पृथु के स्वप्न का अर्थ उर्वी बताती है और अकाल के निराकरण का मार्ग भी बताती है। खेतों को समतल बनाने से वर्षा का जल खेती में ठहरे गोधन द्वारा धृत, दुग्ध एवं उर्वरक बनाया जाए। सरस्वती की सूखती जलधारा को बनाए रखने के लिए दशद्वती पर बाँध बांधा जाए और नहर द्वारा यमुना का जल खींचकर सरस्वती में मिलाया जाए। ऐसे खेती की सींचाई कर सकता है। पृथ्वी धन धान्य से समृद्ध रहेगी और प्रजा संतुष्ट रहेगी। पृथु को बात समझ में आती है। वह उर्वी और कवष को मिलाकर नया आंदोलन शुरू करता है। सरस्वती पर बाँध बाँधने की योजना बनाता है। निन्यानबे प्रकार से पृथ्वी का दोहन करके प्रजा को प्रसन्न करता है। ''सभी प्रकार की वस्तुएँ धरती से प्राप्त होती हैं। पृथु के नाम पर ही उसे नए नाम पृथ्वी से विभूषित किया जाता है।''[18]

अब पुरुषार्थी राजा के हाथ में धनुष्य के स्थान पर कुदाल है। ब्रह्मावर्त की भूमी की कायापलट हो गई है। पृथु 100 अश्वमेध यज्ञों को अनुष्ठान करता है। निन्यानबे पूरे हो जाते हैं। सौंवा यज्ञ पूरा होने के लिए दृषद्वती की धारा को मोड़नेवाला बाँध तैयार किया जा रहा है। शुक्राचार्य, अत्रि और गर्ग के षड़यंत्र से मजदूरों का अभाव पूरा नहीं हो पाता। राजा पर कवष और उर्वी का महत्त्व बड़ता है। लेकिन मुनिगण इस योजना से प्रसन्न नहीं। क्योंकि ऋषि मुनियों का समाज में महत्त्व कम हो जाएगा। उनके मन में यह भी भय था कि राजा भी उन्हें महत्व नहीं देगा। इसलिए ये सभी मुनिगण एकत्र होकर ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर देते हैं कि ठीक उस समय जब हिमालय की तलहटी में वर्षा होती है, नदियों में बाढ़ आने को होती है। बाँध को पूरा करने के लिए आवश्यक मजदूर भी नहीं मिलते। बाढ़ आकर अधूरे बांध को बहा ले जाती है। इस प्रकार शुक्राचार्य की शुक्रनीति और मुनियों की कूटनीति पृथु के सपने को ठुकरा देता है। पृथु मजदूरों के साथ बाँध निर्माण के लिए जानेवाला था। तब सूत और मागध आकर बाँध टूट जाने की खबर देते हैं। साथ ही मजदूरों के साथ कवष और उर्वी भी बह जाते हैं यह समाचार भी देता है। इस घटना से

मुनिगण प्रसन्न हो जाते हैं। लेकिन पृथु इस घटना को अपना पराजय समझता है। वह कहता है- ''मैं आदि राज पृथु, आर्यों का पहला राजा, मेरा यही स्वरूप तो सदियों बाद याद किया जाएगा, धनुष्यबाण से सुसज्जित देह, खड्ग की चमक से मंड़ित मुख, शत्रुओं को दहलानेवाले घोर स्वर का विधायक पराक्रमी विजेता दस्युओं का विनाशक, प्रजा का नायक, मुनियों का पालक-पृथु। लोग कहेंगे पृथु अवतार था। ....अवतार लेकिन इस मुखौटे के नीचे मेहनत के पसीने से चमकता चेहरा कौन जानेगा ? इन हाथों में कुदाली की पकड़ को कौन समझेगा ? किसे ध्यान होगा कि धरती को समतल बनाकर उसे दोहनेवाले हाथ कौन से थे ? पृथ्वी ! ....पृथु की पृथ्वी। ....कौन समझेगा इन शब्दों को।''[19] वह हृदय विदारक और मार्मिक शब्दों में उर्वी को 'सहचरी', 'प्राण' और 'माँ' के रूप में स्मरण करता है। पुराणकारों ने भी पृथ्वी (उर्वी) को कहीं पृथु की कन्या, कहीं उसकी सहचरी पत्नी और कहीं उस की माता का स्वरूप प्रदान किया है। शुक्राचार्य के संकेत से राजा पृथु पूर्वी अंचल में शत्रुओं के संहार के लिए चले जाते हैं।

उस समय आर्यों के जीवन में तीन युगांतकारी परिवर्तन हुए थे। पहला उनकी राजनीतिक व्यवस्था में सत्ता मुनियों के साथ से निकलकर शासकों के हाथ में आयी और अंततः शासक को राजा का स्वरूप दे दिया गया। दूसरा महान परिवर्तन या आर्यों का भारत की प्राचीन आर्येतर जातियों से संपर्क और उन्हें अपने समाज में या समाज के इर्द-गिर्द स्थान देना। तीसरी महत्त्वपूर्ण बात थी जमी हुई खेती- बस्तियों और नागरिक सभ्यता के प्रति आर्यों की प्रतिक्रिया और उस प्रकार के जीवन को क्रमशः स्वीकार करना। धरती को समतल कर, उसकी संपदाओं का उपयोग करना इत्यादी।

3. शारदीया -

जगदीशचंद्र माथुर जी के दूसरे नाटक शारदीया की पृष्ठभूमि 19 वीं शताब्दी के मराठा इतिहास से संबंध है, परंतु कोणार्क की भाँति इसकी भी मूल भाव-वस्तु कलाकार और उसके प्रेरणा स्रोतों का परिवेश के साथ संबंध ही है। स्वयं नाटककार के शब्दों में, ''मन और तन के अंधेरे और घुटन के बंधन में जकड़नेवाले उस कारागार में इस कलाकार बंदी को किस अजस्र सौंदर्य से प्रेरणा के विरामहीन घूँट मिले- इस प्रश्न ने मेरी कल्पना को उत्तेजित किया और तभी नरसिंहराव

और उसकी प्रेयसी की काल्पनिक मूर्तियाँ सजीव हो गई। कलाकार और उनके विभिन्न बाह्य तथा आंतरिक संबंधों से उलझाव इस नाटक को समकालीन हिंदी साहित्य की अन्य सर्जनात्मक विधाओं से जोड़ती ही है, साथ ही नाटक को मनोरंजन का साधन मात्र बनाने की बजाय उसे एक गहरे स्तर पर महत्त्वपूर्ण सर्जनात्मक कार्य-कलाप का स्थान भी प्रदान करता है।''[20]

स्थूल शरीर की अपेक्षा अनुभूति और कल्पना को शारदीया में महत्त्व दिया है। यही शारदीया नाटक की मूल विशेषता है और स्वीकृति भी। इसमें अनुभूति और कल्पना का परस्पर संबंध है। कोणार्क नाटक की भाँति इस नाटक की मूल अवधारणा भी काव्य के स्तर पर हुआ है। इसी कारण इसका केंद्रीय तत्व काव्यात्मक अनुभूति है।

शारदीया रचना के पीछे काम करनेवाली अपनी मानसिकता का परिचय देते हुए नाटककार ने प्राक्कथन में कहा है कि ''कुछ वर्ष हुए मुझे नागपुर म्यूजियम में एक असाधारण वस्त्र देखने को मिला उसकी लंबाई पाँच गज से अधिक यानी एक साड़ी के बराबर है। किंतु वजन उसका केवल पाँच तोला है। धवल रंग की इस साड़ी में कुछ ऐसी आभा है जो आजकल के वस्त्रों में मुश्किल से पाई जाती है। इस साड़ी या वस्त्र को ग्वालियर किले के एक तहखाने में बुना गया और इतनी बारीक के बुनकर ने अपने अंगूठे के भीतरी नाखून में सुराख कर लिया था ताकि वह ढरकी यानी शटल का काम दे सके। बुननेवाला व्यक्ति राष्ट्रद्रोह के अपराध में दौलतराव सिंधिया की आज्ञा से सन 1795 में खद्र्ध के उस इतिहास प्रसिद्ध युद्ध में बंदी बना लिया गया था। मन और तन को अंधेरे और घुटन के बंधन में जकड़नेवाले उस कारागार में इस कलाकार बंदी को किस अजय सौंदर्य से प्रेरणा के विरामहीन घूँट मिले ? इस प्रश्न ने मेरी कल्पना को उत्तेजित किया और तभी नरसिंहराव और उसकी प्रेयसी की काल्पनिक मूर्तियाँ साकार हो गई.... मर्मज्ञ पाठक और दर्शक बंदी को बांधनेवाली जंजीरों की खड़कन से परे उसकी उन्मुक्त स्मृतियाँ और उसकी स्वच्छंद कल्पना में सीमाहीन आलोक और निर्बाध गति की झनकार सुन पाएँगे।''[21]

नाटक का प्रथम दृश्य में 1794 की शरदपूर्णिमा की संध्या में सखाराम घाटगे के मकान का दृश्य है। घाटगे की पुत्री बायजाबाई अपने काम में व्यस्त है। इतने में दरवाजे पर आवाज सुनता है। दरवाजा खोलकर देखने पर बायजाबाई देखता है कि उसका बचपन का प्रेमी

नरसिंहराव उपस्थित है। जब वह दोनों कागल में रहते थे तब दोनों के बीच गाढ़ी दोस्ती थी वह बाद में प्यार में बदल गई थी। बायजाबाई की माँ ने दोनों के प्यार को देखकर नरसिंहराव को धन कमा के आने के लिए प्रेरित किया। वह वचन भी दिया की जब वह गृहस्थी जमाने की पूँजी कमाकर आएगा तब बायजाबाई का ब्याह उसी के साथ किया जाएगा।

दो वर्ष पहले नरसिंहराव ने पूरी उम्मीद के साथ विदा लिया था कि वह बायजाबाई की दुनिया ही बदल देगा। दो वर्ष के बाद वह आ गया तभी तक पूरा कागल गाँव बदल चुका था। सखाराम घाटगे की किलेदारी चली गई थी। अपमानित सखाराम को कागल छोड़ना पड़ा वह पूना में आकर नाना फडणवीस के यहाँ नौकरी करने लगा। सखाराम घाटगे के मन में प्रतिशोध की अग्नि धधकती थी कि मराठा राज्य को किल्लेदारी छीनने की बड़ी-से-बड़ी कीमत चुकानी पड़ेगी। इसी बीच बायजाबाई की माँ का निधन होता है। बायजाबाई को अकेलापन महसूस होता है। तब उसको पुरानी परिचारिका सरनाबाई साथ देती है।

दो वर्ष के बाद नरसिंहराव बायजा को मिलने आता है तब उसे देखकर बायजाबाई को अत्यधिक खुशी हो जाती है। अपने वादे के मुताबिक नरसिंहराव गृहस्थी जमाने के लिए आवश्यक पुँजी लेकर आया था। लेकिन आने के बाद ही उसे पता चलता है कि वादा निभानेवाली मर चुकी है। दो वर्षों तक निजाम हैदराबाद के दरबार में सिंधिया के सरदार काले के साथ रहा। हैदराबाद में कुशल कारिगरों की तैयारी की गई, साड़ी बंबई में जाकर बेचना उसका काम था। इसके साथ उन्होंने और एक काम भी सीखा वह था अंगूठे के नाखून में छेद बनाकर पाँच तोले वचन की पाँच गज की साड़ी बुनने की अनुठी कला।

आज नरसिंहदेव बायजाबाई के पास अपना वचन निभाने का समाचार लेकर आया है। उसके मन में यह भी कामना थी कि मराठे एवं निजाम के बीच के संभावित आगामी युद्ध में वह सच्चे मराठावीर सैनिक की तरह भाग लेकर धन कमाने के बाद यश प्राप्त करेगा उसके बाद ही आकर बायजा से शादी करेगा। बायजा को जीवन में कभी अफसोस नहीं पहुँचने देता। युद्ध में विजय प्राप्त करने के बाद विजयी सैनिक के रूप में लौटने के बाद दोनों विवाह करेंगे तभी तक बायजा इंतजार करेगी, इस आश्वासन पे वह बायजा से विदा लेना चाहता है। इसलिए वह दो साल

15494

के बाद आया है। अपनी ऊँगली चीरकर बायजा नरसिंह को विजय तिलक लगाती है। विदा लेने के पहले नरसिंह बायजा से कहता है- "चाहे मैं तुम्हारे निकट होता हूँ, चाहे तुमसे दूर, शरद की पूर्णिमा की तरह तुम मेरे मानस में छाई रहती हो। निर्मल, शीतल... मन के कोने-कोने को भासमान करती रहती हो। गहरे अंधकार में मैंने मुस्काती चाँदनी का अनुभव किया है, बायजाबाई तुम्ही तो मेरी चाँदनी हो, मेरी शारदीया।"[22]

नरसिंहराव युद्ध के बाद एक विशेष तिथि को पहनी जाने को एक विशेष भेंट देने का वादा करके बायजा से विदा लेता है। दोनों को उम्मीद दी की शारदीया की दूर तक फैली वह चाँदनी उनके उज्वल, शीतल, निर्मल भविष्य का प्रतीक बनेगी। लेकिन नरसिंहराव और बायजाबाई के प्रेम को अभी कई मुश्किलों से गुजरना पड़ता। नरसिंहराव वापस जाने के बाद सखाराम आते हैं और वह बेटी को बताता है कि कागल की किल्लेदारी वापस मिलने का रास्ता खुल गया है। वह बताता है कि सर्जेराव घाटगे के रूप में उसकी अभी सिंधिया महाराज तक पहुँच हो गई है। सिर्फ किल्लेदारी नहीं और बहुत कुछ पाया जा सकेगा। माँ की अनुपस्थिति में बायजा स्वयं ही नरसिंहराव की बात और माँ के वादे की बात बताने के लिए विवश है। लेकिन सखाराम घाटगे का इस बात पर विपरीत प्रतिक्रिया है। वह इस बात को नकार करके बताता है कि "आज से नरसिंह तेरा कोई नहीं है।"[23] क्योंकि "तेरे पिता की महत्वाकांक्षा कागल पर नहीं रूकेगी। उस महत्वाकांक्षा के यज्ञ को पूरा करने के लिए अगर तेरी आहति की जरूरत हो तो भी मैं नहीं झिझकुँगा।"[24] आगे सर्जेराव बायजा से कहता है- "तेरे लिए वर मैं चुनूँगा। वर ऐसा जिसके यहाँ तू रानी बन कर रह सके।"[25] सर्जेराव घाटगे ने बेटी का भविष्य तय कर लिया था। नरसिंहराव को बेटी की रास्ते से हटाने के लिए उन्होने पद्धतियाँ बनाया था। बायजा द्वारा लगाई गई रक्त की ठीका को उसने कहता है- "रक्त की टीका। वही ठीका उसका काल बनेगा।"[26] इस तरह वह नरसिंहराव के प्रति अपना नफरत प्रकट करता है। साथ ही बेटी को कूटनीति का शिकार बनाती है।

दूसरा दृश्य खर्दा की सीना नदी के किनारे मराठे के सैन्य शिविर का है। परशुराम भाऊ, बाबा फड़के, दौलतराव सिंधिया और जिन्सेवाले ने सिंधिया के शिविर में युद्ध संबंधी परामर्श कर रहे हैं। ग्वालियार के किलेदार जिन्सेवाले अपने मित्र और भेदिया नरसिंह के कारनामों

और व्यक्तित्व की चर्चा करता है। रणनीति तैय होती है। शिबिर के कोने में बैठकर सर्जेराव घाटगे सबकुछ सुन लेता है। कुछ समय के बाद नरसिंह आता है सब मिलकर तय करते हैं कि अगले दिन जब नदी के उस पार खड़ी निजाम की सेना का अगला दस्ता पीछे की ओर पिछला रास्ता आगे की ओर बदल रहा होगा तब मराठा लोग हमला करेंगे। नरसिंह पुल के रास्ते पर रूककर निजाम के आदमियों को तोड़ देगा। तोप बिठाने के ठिकाने भी तय होता है। इस सब का दायित्व नरसिंह पर है। बायजा से उसने इस दायित्व के बारे में बताया है और यश प्राप्त करने की आशा भी दी थी। इतिहास में अपना स्थान बनाने की गरज है। वह सेनापति परशुराम भाऊ के समक्ष एक प्रस्ताव रखता है - ''दोनों राज्यों में हिंदु और मुसलमानों को अपने धर्मकाज करने की पूरी आज़ादी होगी, न दखन में गोवध होगा न महाराष्ट्र में खुदापरस्ती पर रोक-टोक, हिंदु और मुसलमान दोनों परमात्मा की संतान हैं। इसलिए न हिंदु मंदिरों पर आघात होगा, न मुसलमान मजारों, पीरों और पैगंबरों का अपमान किया जाएगा। दोनों एक-दूसरे के साथ मेल-मिलाप से रहेंगे। एक माँ की गोदी में दो भाई।''[27]

नरसिंहराव हिंदू-मुस्लिम एकता पर प्रस्ताव रखता है। उन्होंने हिंदू मुसलमानों को धार्मिक स्वतंत्रता और समानाधिकार की बात कहता है। निजाम और मराठों को एक साथ लाना चाहता है। सेनापत उसको वादा करता है उन्होंने निर्णायकों तक उसकी बात पहुँचाएगा। सब तैयारियाँ की चर्चा होने के बाद सब चले जाते हैं। यह सब सर्जेराव घाटगे छुपकर सुनता है। सिंधिया महाराज उसी का इंतजार कर रहे थे। दो वर्ष पूर्व के शारदोत्सव के दिन सिंधिया ने बायजाबाई को देखा है। तब से उने मन में बायजा को पाने की इच्छा थी। घाटगे से सब कुछ बता देते हैं। घाटगे के सामने सिंधिया विवाह प्रस्ताव रखते हैं। घाटगे इसके पहले ही अपनी बात स्पष्ट करता है। वह नरसिंह को दूधारी तलवार तथा आधा मुसलमान कहता है। सिंधिया विश्वास करने के लिए मजबूर करता है। घाटगे ने नरसिंह को विश्वासघाती बताते हैं और उससे बदला मैं लूँगा ऐसा आश्वासन खुद लेता है। तब सिंधिया बायजा के बारे में इशारा करता है। अपने उच्चकुलीन ब्राह्मण होने की बात कहकर घाटगे शुरू में हिचकिचाहट जताता है। फिर मंजूर करते हैं- ''अनुग्रहीत हूँ सिंधिया महाराज। ....उपकार का बदला चुका दूँगा। आपका प्रताप बढ़े-आपसे

स्पर्धा करनेवालों का सिर नीचा हो- यही मेरी कोशिश रहेगी। ....आपको मेरी जरूरत है, सिंधिया महाराज और आपकी।"[28] घाटगे को रणनीति विधित थी ही। अगले दिन अपने कुछ आदमियों से भाऊ साहब के तोप पर गोलाबारी करवा देता है और खुद ही सिंधिया को यह खबर देता हुआ सिंधिया के मन में यह गलत विश्वास जगाता है कि भाऊ का तोप का ठिकाना नरसिंह ने दुश्मनों को बताया। इसलिए नरसिंह को राष्ट्रद्रोह की सजा मिलती है। घाटगे उसे ग्वालियर के किले में कैद रखने की अनुमति लेता है। पुल को नष्ट करने का समाचार लेकर नरसिंह आता है और भाऊ से जोरदार आक्रमण करने के लिए कहता है तब भाऊ प्रसन्न होता है। उसके मन में अप्रत्याशित आक्रमण की चिंता होती है। लेकिन वह युद्ध की व्यवस्था में लग जाते हैं। नरसिंह अपने एकमात्र सच्चे दोस्त जिन्सेवाले की प्रतीक्षा में हैं, उनसे सब कुछ बताने के लिए लेकिन तभी तक कुछ लोगों ने उसे आकर घेरा और बंदी बनाकर लेके गया। राष्ट्रद्रोह के जुर्म को उन्हें फाँसी पर चढ़ा देने की शिक्षा दिलवाकर और उन्हें ग्वालियार भेज देने की योजना भी वह करता है। तीसरे दृश्य के इस अंत के साथ नाटक का प्रथम अंक पूरा होता है।

नरसिंह बंदी बनाने की एक महीने बाद की दृश्य में बायजाबाई नरसिंह की कुछ खबर नहीं मिलने के कारण विषण्ण मनस्थिति में है। उसके पिता सर्जेराव ने लखनऊ से एक तवायफ मँगाई है। बायजा को नृत्य, संगीत दरबारी कायदे कानून आदि की शिक्षा देने के लिए रहिमन नियुक्त की गई। लेकिन बायजा को यह सब भाता नहीं। कृष्ण के वियोग में सिसक-सिसक मरनेवाली गोपियों की तरह बनना वह नहीं चाहती। अपने प्रियतम को ढूँढ़ने के लिए वह जाने को तैयार हो जाती है। बायजाबाई अपनी विश्वस्त सेविका सरना को भी साथ लेती है। दोनों मिलकर नरसिंह को खोजने के लिए निकल पड़ते हैं। वहाँ से निकलते वक्त घाटगे उन्हें पकड़ लेता है। बायजाबाई और सरना के इस चाल को समझकर सरना को तुरंत गाँव भेजता है। बायजा की खयाल रखने का काम रहिमन पर सौंप देता है। अपने प्रियतम को पाने की पूरी इच्छा धूल में पड़ जाती है। भग्न हृदय बायजा अपने आपको परिस्थितियों को समझ लेती है। बेटी के सामने नाटकीय ढंग से यह रहस्य खोलता है कि युद्ध में निजाम के हाथ से नरसिंह मारा जाता है। बायजाबाई यह बात सुनकर सिसकने लगती है। उस वक्त सर्जेराव उसे कहता है- "दुख तो तुझे

होगा ही और तेरी पीड़ा मेरे ढाढ़स बंधाने से कम भी नहीं होगी।''[29] सर्जेराव का कामना है कि इससे बायजा का प्रेम घृणा में बदल जाएगा और नरसिंह की प्रतीक्षा समाप्त हो जाएगी। अपने आप उसकी शादी सिंधिया से हो जाएगी। सर्जेराव की इस चाल से नरसिंह और बायजा की प्रेम की दिशा बदल जाती है।

इस अंक का दूसरा दृश्य ग्वालियार किले के तहखाने में खुलता है और नरसिंह को मिलने के लिए सरदार जिन्सेवाले आया है। सरदार जिन्सेवाले ने बड़ा भरसक प्रयास करके सिंधिया से मित्र की फाँसी की सजा बदलवाकर आजन्म कारावास करा ली है। यही सूचना जिन्सेवाले नरसिंह को जब देता है तब नरसिंह की निराशा अथाह हो जाता है। उसने कुछ दिनों में अपने जीवन से मुक्ती का सपना देखता था अब वह अपनी ही लाश को कितने वर्षों तक दोनों रहना पड़ेगा। इस कल्पना में वह डूब जाता है। शारदीया (बायजाबाई) को पाना तो कब का सपना बन चुका था। अब उसका जीवन भी उसके लिए धीरे-धीरे सपना बनता जा रहा था। जिन्सेवाले जब भाऊ पर आक्रमणवाली बात उससे पूछते हैं तो वह यह सच ही कहता है- ''सरदार जिन्सेवाले यह सरासर झूठ है। ....मुझे नहीं मालूम कि गोलियों की बौछार क्यों और कहाँ से आई, लेकिन मेरे इशारे से ? .....उफ... यह झूठ है। यह मिथ्यारोप है।''[30]

इस बात को सरदार जिन्सेवाले भी सच मानते हैं। उसको अफसोस हुआ कि सिंधिया के सामने वह इस भ्रम से मुक्त नहीं कर सका। ऐसा हो तो नरसिंह आज़ाद होता था। किसी षड़यंत्र की कल्पना न जिन्सेवाले की थी और न नरसिंह की। अपने लंबे कारावास का सार्थ उपयोग करना नरसिंह चाहता है। उस वक्त शारदीया के लिए कुछ बनाने की चिंता नरसिंह के मन में आती है। वह जिन्सेवाले को कहता है कि हैदराबाद से वे पंचतोलिया बुननेवाला एक करघा मँगा दे। इससे अपनी शारदीया के लिए एक ऐसा अमूल्य उपहार बुनेगा और साथ में कारागार के कुछ काले वर्ष भी कट जाएँगे। ''मैं अंधेरे की जिंदगी में उजाले का ताना-बाना बुनुँगा शारदीया के लिए... जब तक जिंदा हूँ, तब तक बुनता रहूँगा। रूपहले और सुनहरे पल्ले। हवा सी हल्की, कुसुम-सी कोमल, चाँदनी सी झीनी चाँदनी... शारदीया... वही तो असली चाँदनी है। ...मेरी काल-कोठरी में उसकी ज्योती बरसेगी शारदीया की ज्योति।''[31]

नरसिंह के शारदीया को जिन्सेवाला पहचान नहीं पाया वह तो लौट जाते हैं। लोहे के दरवाजे कर्कश आवाज के साथ बंद हो जाते हैं और अंधेरा नरसिंह को घेर लेता है। राष्ट्रद्रोह का आरोप लगाकर नरसिंह को जिस दिन बंधी बनाया था और फाँसी की सजा सुनाई थी। उसी दिन नरसिंह का दिल टूट गया था। इधर बायजा का दिल भी घाटगे ने अपनी कुटनीति के कारण तोड़ दिया था। दोनों निस्सहाय थे। एक-दूसरे को मिलने नहीं पाया। इस प्रकार यह अंक समाप्त होते हैं।

अंतिम अंक के प्रथम दृश्य में घाटगे का मकान है जहाँ सिंधिया घाटगे द्वारा आयोजित नवाबी दस्तरखाना, साकी, शराब और अफीम का सेवन कर रहे हैं। उसके साथ नाच-गान सुनते हैं। खर्दा की विजय के उपरांत मराठा-राज्य में अनेक परिवर्तन हो चुके हैं। बाजीराव द्वितीय पेशवा है। दौलतराव सिंधिया अभी तक पूना में हैं। नाना फड़णवीस की शक्ति समाप्त हो चुकी है और उन्हें सिंधिया की ओर से सर्जेराव घाटगे ने बंदी कर लिया है। सिंधिया इस आशा में घाटगे के हाथों कठपुतली की तरह नाचते हैं कि बदले में बायजाबाई मिलेगी। अंत में घाटगे को दीवान बनाने की आदेश पर दस्तखत करते हैं। एक महीने बाद उनकी बायजाबाई के साथ शादी तय करता है। दृश्य के बीच में कुछ देर के लिए घाटगे आज्ञापत्र बनवाने के लिए बाहर गया है उसी बीच सरदार जीन्सेवाले आते हैं। मराठा राजा सिंधिया की यह नवाबी चाल देखकर वह आश्चर्यचकित होते हैं। अपने प्रियमित्र को क्षमा करने की प्रार्थना करता है। सिंधिया उसे चुप रहने के लिए कहते हैं और हिदायत करते हैं कि घाटगे को यह मालूम न हो कि नरसिंह जीवित है। एक महीने के बाद उनकी शादी हो जाएगी तो महारानी ग्वालियर जाएगी और यह उन पर निर्भर करेगा कि वे नरसिंह को मुक्त कर देती है या कारागार में ही छोड़ देती है। जिन्सेवाले बात नहीं समझ पाता है। लेकिन उसको इतना मालूम हो जाता है कि नरसिंह की इस दुर्दशा के पीछे लंबा षड़यंत्र है और सिंधिया को उसका पता है। इस दृश्य में घाटगे की दीवानी के आज्ञापत्र पर हस्ताक्षर के साथ पूरा होता है। इस प्रकार सर्जेराव घाटगे ने अपनी पुत्री बायजा को दाँव पर लगाकर अपने अंतिम महत्वाकांक्षा पूरी कर ली।

इस अंक का दूसरा और अंतिम दृश्य ग्वालियर किले के उसी कारागार का है। प्रस्तुत दृश्य के पूर्वार्ध में नरसिंह और किले का गढ़पति की तथा उत्तरार्ध में नरसिंह और बायजाबाई

की भेंट और बातचीत है। यह दृश्य करूण और मार्मिक है। गढ़पति आ के नरसिंह को सूचना देता है कि महारानी आई है और बोलता है कि महारानी दयालु है। नरसिंह को गढ़पति यह आशा दिलाता है कि अन्य सभी कैदियों के साथ उसकी भी रिहाई हो जाए। लेकिन नरसिंह यह रिहाई नहीं चाहता है। दो वर्षों के उस अंधेरे कारावास में उन्होने अपनी पूरी आशाएँ छोड़ी थी उसकी एक ही आशा रह गई थी कि पंचतोलिया साड़ी अपने प्रेयसी को भेंट देना। गढ़पति ने उसके हाथ के जंजीरें तोड़ दिए। लेकिन उसके हाथ पैर करघे में बंधे थे। अब उसके पास कल्पना के एकमात्र संसार है। अंधेरे कमरे में भी वह बाहर छिटकी शारदीया की चाँदनी को देख सकता है। बगीचे में गुलाब के फूल सुंघ सकता है। हवा के सहारे तैरकर कमरे के भीतर आ जानेवाली पीलख चिड़िया का संगीत सुन सकता है। वह गढ़पति से कहता है- ''मेरी पीलख पर कोई बंधन नहीं है गढ़पति। नीले आसमान की रागिनी में उसकी पीली ज्योति एक मधुर तान है और इस तंग कोठरी की दबी मुस्कान के पर्दे पर उसकी उड़ान खिलखिलाती हुई हँसी। कभी-कभी गढ़पति जो इस तहखाने में बहुत भीड़ जमा हो जाती है।''[32] इसी समय महारानी के आने की खबर दी जाती है और गढ़पति नरसिंह को समझाता है कि महारानी के विवाह की शुभ दिन में उसे पंचतोलिया साड़ी भेंट दे। नरसिंह के लिए ''यह कपड़ा.... यह तुम्हारी स्मृतियों का ताना-बाना। यह महारानी को दूँ ?.... असंभव। ....ओह शारदीये। ये लोग कितने नादान। ये पत्थर समझदार हैं, जो तुम्हें मेरे पास आने देते हैं। जो रात में मुंदते कमल की पंखुड़िया बन जाते हैं।''[33] नरसिंह को पता नहीं था कि महारानी ही उसकी शारदीया है, जो आज ठीक दो वर्षों बाद ठीक शारदीया के दिन उससे मिलने आ रही है। जिन्सेवाले आकर नरसिंह को बता देते हैं कि महारानी उससे मिलने आई है। उस वक्त नरसिंह कहता है- ''नहीं सरदार ! क्या आप नहीं जानते कि आज शरद पूर्णिमा है और किसके दर्शन का आज मैं भिखारी हूँ।''[34] आँख मूँदकर रोते सिसकते नरसिंह को नहीं पता था कि उसके सामने शारदीया खड़ी है। जब जिन्सेवाले बताते हैं कि महारानी उससे मिलने आई है और महारानी ही बायजाबाई है तो उधर देखता है दोनों एक-दूसरे को एक क्षण देखते रह जाते हैं। फिर बायजाबाई नरसिंह को सारी कहानी बताती है कि उसके पिता सर्जेराव ने उसके साथ झूठ बोलकर वंचित किया, नरसिंह के साथ भी फरेब किया। सारी बातें जानकर भी यह नहीं समझ पाता कि कौन

जहरीला साँप है जो घाटगे के मन में कुंडली मारकर फन फैलाए बैठा है तो बायजा बताती है- "हमेशा भड़कनेवाली आकांक्षा का सर्प। उसीकी फुंकार के शिकार तुम बने नरसिंह और ....मैं भी।"[35] बायजाबाई को पता था कि घाटगे से छिपकर ही सिंधिया ने नरसिंह की फाँसी रोक दी थी और अब सिंधिया ने उसे यह अधिकार दे दिया है कि वह चाहे तो नरसिंहराव को मुक्त कर सकते हैं। बायजा उससे पूछती है- नरसिंह जिसके मुक्त होने की कामना कर सकता था अब वह भी उसकी नहीं रही। वह बायजाबाई से कहता है- "रिहाई! महारानी किसी जीवन के लिए रिहाई? किस नियामत के लिए रिहाई? जिसे तुम रिहाई कहती हो वह मेरा कारागार होगी.... बायजाबाई इस तहखाने का आकाश सीमाहीन है इसकी टिमटिमाती ज्योति में सहस्रों सूर्य भासमान हैं। क्या तुम भी नहीं समझोगी मेरी इस सीधी, गहरी बात को?"[36]

बायजाबाई सभी बातें समझती है और जब वह वापस लौटने के लिए निकलती है तो नरसिंहराव उसे पंचतोलिया साड़ी भेंट कराता है और कहता है- "अपना वायदा पूरा करने के लिए तुमने कहा था न? आज....आज वह तिथि आई है, याद है? उस शरद पूर्णिमा को तुमने अपनी ऊँगली के खून से मुझे टीका दिया था। ....मैं उस रक्त की बूँद को भुला नहीं था, बायजाबाई आज मैं तुम्हें विदा दे रहा हूँ.... तुम्हारे टीके ने मुझे बचाया और.... यह साड़ी... यह मेरा रक्तदान.... यह अंचल.... यह तुम्हारे नये जीवन में तुम्हारी रक्षा करें।"[37]

दर्द से टूटी बायजाबाई आखिरी बार नरसिंह को साथ चलने के लिए कहती है, पर नरसिंह फैसला कर चुका है- "मैं यही रहूँगा, क्योंकि तुम यहीं हो महारानी नहीं, बायजाबाई नहीं, लेकिन तुम, तुम मेरी शारदीया। मेरी शारदीया.... तुम मेरी हो, हमेशा थी हमेशा राहोगी।"[38]

नरसिंह का बायजा के प्रति प्रेम अब पूर्णतः अशरीरी हो गया है, पूर्णतः निर्विशेष, निर्विकल्प। न महारानी के शरीर से न बायजाबाई के शरीर से ही वह जुड़ा है उसका प्रेम तो अब एक भाव बन चुका है।

निष्कर्ष -

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि माथुर के तीनों नाटक अत्यंत प्रभावी और सफल हैं। अपने नाटक के लिए उन्होंने अत्यंत सशक्त माध्यम को ही चुना है। माथुरजी अपने नाटक की सिर्फ विषयवस्तु इतिहास और पुराण को चुना लेकिन नाटक के दूवारा समकालीनता को बताना

उनका लक्ष्य रहा। कलाकार के चिरंतन मौन को वाणी देने के लिए कोणार्क की कथावस्तु का आधार ग्रहण किया गया है। दूसरी ओर शारदीया का कथ्य पौरुष के अभिशाप के रूप में कलाकार का चिरंतन मौन बनकर उभरता है। पहला राजा में कथावस्तु का मुखौटा अन्योक्ति के लिए धारण किए हुए है। अनुभूति और कल्पना के माध्यम से माथुर पात्र के अंतरजगत् को इतना महत्त्व देने लगते हैं कि कथावस्तु गौण हो जाती है। मानव और मानवीय संबंधों की प्रधानता उनके नाटक में प्रमुख है। इसीलिए उनके नाटक चरित्र-प्रधान हो गए।

'कोणार्क' कला का भाष्य कहा जा सकता है। उसमें बुद्धि और हृदय का अपूर्व योग हुआ है। हृदय तत्व की प्रधानता के कारण 'कोणार्क' रंगमंच का काव्य बन पड़ा है। हिंदी नाट्य-साहित्य के विकास क्रम में 'कोणार्क' को एक विशिष्ट भूमिका रही है। अनुभूति और आदर्श दोनों स्तरों पर वह हृदय को प्रभावित करता है। इतिहास माथुरजी के लिए माध्यम मात्र रहा है। कोई भी कलात्मक लेखन अनुभूति और अनुभव पर आधारित होता है।

तृतीय अंक कथावस्तु को चरम सार्थकता प्रदान करता है। यह अंक अत्यंत सशक्त और प्रभावोत्पादक है। इस अंक में विशु के अंतर की पीड़ा, आक्रोश और पराजय का जैसा बिंब उतारा गया है, वह उसके एक-एक मुद्रा में व्यंजित हुआ है।

इतिहास के स्थूल शरीर की अपेक्षा अनुभूति और कल्पना की अभिव्यक्ति ही 'शारदीया' नाटक की मूल स्वीकृति है। अनुभूति मूल में है और कल्पना उसे सक्रिय करती है। इस नाटक का केंद्रीयतत्व काव्यात्मक अनुभूति है। कोणार्क की ही भाँति इस नाटक के केंद्र में भी व्यक्ति है। राजनीति की स्थूल घटनाओं के बीच बायजाबाई और नरसिंह के व्यक्तित्व प्रणय के अंतर्संबधों का चित्रण हुआ है। झूठ, फरेब, आत्म प्रवंचना और स्वार्थ गर्भित आकांक्षा का आधार लिए सिंधिया और घाटगे के क्रियाकलाप बायजा और नरसिंह के करुण प्रेमगाथा में अद्भुत आकर्षण प्रदान करता है।

'पहला राजा' नाटक मिथक पर आधारित है। राजा पृथु की पौराणिक गाथा आदिम समाज-व्यवस्था से संबंद्ध है जब कोई राजा न था। स्वतंत्रता के बाद के शासक, शसित, सुविधा भोगी वर्ग, उपेक्षित क्रुद्ध जन की प्रतिकात्मकता भी पृथु की कथा में दिखाई देती है। उर्वी धरती की लौकिक आत्मा को व्यंजित करती है।

संदर्भ सूची

1. कोणार्क - जगदीशचंद्र माथुर, पृ. 48
2. वही, पृ. 47
3. वही, पृ. 52
4. वही, पृ. 53
5. वही, पृ. 58
6. वही, पृ. 59
7. वही, पृ. 71
8. पहला राजा (पृष्ठभूमि) - जगदीशचंद्र माथुर, पृ. 57
9. साप्ताहिक हिंदुस्तान - जगदीशचंद्र माथुर, पृ. 57
10. पहला राजा - जगदीशचंद्र माथुर, पृ. 6
11. वही, पृ. 43
12. वही, पृ. 71
13. वही, पृ. 46
14. वही, पृ. 37
15. वही, पृ. 38
16. वही, पृ. 82
17. वही, पृ. 59
18. वही, पृ. 85
19. वही, पृ. 97
20. शारदीया (प्राक्कथन) - जगदीशचंद्र माथुर, पृ. 5
21. वही, पृ. 5
22. शारदीया, पृ. 27, 28

23. शारदीया, पृ. 34
24. शारदीया, पृ. 33
25. शारदीया, पृ. 33
26. शारदीया, पृ. 34
27. शारदीया, पृ. 44
28. शारदीया, पृ. 50
29. शारदीया, पृ. 75
30. शारदीया, पृ. 82
31. शारदीया, पृ. 85
32. शारदीया, पृ. 101
33. शारदीया, पृ. 107
34. शारदीया, पृ. 108
35. शारदीया, पृ. 111
36. शारदीया, पृ. 112
37. शारदीया, पृ. 113
38. शारदीया, पृ. 114